प्राकृतिक संसाधनों का आर्थिक महत्व

डॉ. उपेन्द्र कुमार

शोधार्थी

संसाधन वह वस्तु अथवा तत्व है जो मानव के लिए उपयोगी है। अतः प्रत्येक तत्व या पदार्थ को संसाधन नहीं कहा जा सकता। वह संसाधन की श्रेणी में तभी आयेगा जब उसमें मानव की आवश्यकता की पूर्ति करने की क्षमता हो। संसाधन शब्द का अंग्रेजी पर्याय दो शब्दों से मिलकर बना है।

इसमें का आशय दीर्घ अवधि से है तथा का अर्थ साधन है अर्थात् संसाधन वे स्रोत हैं जिन पर दीर्घ अवधि तक मानव समाज निर्भर करते हैं। भूमण्डल पर अनेकानेक पदार्थ हैं जिन्हें मानव अपने प्रारम्भिक काल से उपयोग में लेता रहा है। वास्तव में मानव सभ्यता का विकास संसाधनों की उपयोगिता की कहानी है। आदिम अवस्था में केवल आखेट एवं वन पदार्थों के सेवन तक वह सीमित था, उसके पश्चात् पशुओं को संसाधन बनाया तत्पश्चात् भूमि का उपयोग करते हुए कृषि विकास किया। कालान्तर में खनिजों के उपयोग द्वारा औद्योगिक विकास की ओर अग्रसर हुआ। तकनीकी और प्रौद्योगिकी के विकास के साथ–साथ संसाधनों की श्रेणियों का विकास एवं विस्तार होता गया।

ये सभी वस्तुएँ सदैव विद्यमान थी किन्तु उनका उपयोग न होने के कारण वे संसाधन की श्रेणी में न आ सकी। वास्तव में संसाधनों के सम्बन्ध में यह उक्ति उचित है कि **"संसाधन होते नहीं हैं अपितु बनते हैं प्रत्येक जैविक एवं अजैविक पदार्थ से उपयोगिता प्राप्त होते ही वह संसाधन की श्रेणी में आ जाता है। यह मानव की शिक्षा, वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति, समय एवं साधनों पर निर्भर करता है।"**[1] संसाधनों के सम्बन्ध में विद्वानों के कुछ विचार निम्नांकित हैं।

पी.ई. मेक्नाल के अनुसार, प्राकृतिक संसाधन वे संसाधन हैं जो प्रकृति द्वारा प्रदान किये जाते हैं तथा मानव के लिए उपयोगी होते हैं।

इ.डब्लू. जिमरमेन के अनुसार, संसाधन पर्यावरण की वे विशेषताएँ हैं जो मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम मानी जाती हैं, उन्हें मनुष्य की आवश्यकताओं और क्षमताओं द्वारा उपयोगिता प्रदान की जाती है।

स्मिथ एवं फिलिप्स के अनुसार, मौलिक रूप से संसाधन वातावरण की वे प्रतिक्रियाएँ हैं. जो मानव उपयोग में आती है।

‘‘समाज विज्ञान कोष के अनुसार, संसाधन मानवीय पर्यावरण के वे पक्ष हैं जिनके द्वारा मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति में सुविधा होती है तथा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति होती है।’’[2]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि प्रकृति प्रदत्त सम्पूर्ण वस्तुएँ जब मानवोपयोगी स्वरूप धारण कर लेती हैं तो वे संसाधन बन जाती हैं।

संसाधन की अवधारणा

संसाधन प्रकृति प्रदत्त उपहार है जिन्हें मानव अपने कौशल, बुद्धि एवं तकनीक से विभिन्न उपयोग में लेकर आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास करता है। प्राचीन एवं मध्य युग तक संसाधनों के प्रति विश्व सचेत नहीं था किन्तु वर्तमान शताब्दी के औद्योगिक विकास, तकनीकी विकास, जनसंख्या वृद्धि के कारण जब **‘‘संसाधनों का अनियन्त्रित शोषण होने लगा तो शीघ्र ही मानव यह सोचने को बाध्य हुआ कि यदि इसी तरह से संसाधनों का उपयोग एवं दुरुपयोग होता रहा तो न केवल संसाधन समाप्त हो जायेंगे अपितु प्राकृतिक संतुलन भी समाप्त हो जायेगा जो विश्व के लिए हानिकारक होगा।’’**[3] इसी कारण संसाधनों के प्रति विविध अवधारणा एवं

दृष्टिकोण का विकास हुआ।

इसमें एक विचारधारा पूँजीवादी दृष्टिकोण की है जिन्होंने भूगोल में संसाधनों की पर्याप्तता का सिद्ध प्रतिपादित किया। इनका

उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों का शोषण करना रहा। उनके अनुसार पृथ्वी की सम्पदा का बिना रोक–टोक उपयोग किया जाय जिससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि हो। खनिज, शक्ति के साधन, समुद्र, वन जो भी हो उनको किसी न किसी रूप में होना चाहिये।

"दूसरी ओर समाजवादी विचारधारा का विकास संसाधनों की न्यूनता के रूप में किया गया। उनके अनुसार संसाधन सीमित है, यदि उनका अनियन्त्रित एवं अनियोजित शोषण होता रहा तो वे शीघ्र ही समाप्त हो जायेगी। पृथ्वी पर जो प्राकृतिक सम्पदा है वह सीमित है तथा उसका उपयोग नियोजित रूप में होना चाहिये।"[4] यह पर्यावरणीय संतुलन बनाये रखने हेतु भी आवश्यक है। संसाधनों का उपयोग एवं पारिस्थितिकी संकट अन्तरसम्बन्धित है। वर्तमान विश्व के सम्मुख जो पारिस्थितिकी संकट है और इसमें निरन्तर वृद्धि हो रही है उसका मूल कारण प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक शोषण एवं दोहन है।

संसाधन की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए जिमरमेन ने तीन तत्वों को महत्त्व दिया है (1) वह जिस पर मनुष्य आश्रित या निर्भर हो, (2) वह जिससे मनुष्य की इच्छापूर्ति हो, तथा संसाधनों की संकल्पना, वर्गीकरण एवं संरक्षण (3) मानव के अवसर का लाभ उठाने की शारीरिक व बौद्धिक क्षमता। संसाधन हेतु वस्तु में दो गुण आवश्यक है।

(1) उपयोगिता

(2) कार्यात्मकता

स्पष्ट है कि प्रकृति, मानव और संस्कृति तीनों की पारस्परिक क्रियाओं से ही संसाधन अस्तित्व में आते हैं। मानव स्वयं भी एक प्रमुख संसाधन है। उत्पादन के कारकों में मानवीय श्रम एक प्रधान कारक होता है, साथ ही उसकी मानसिक क्षमता एवं सामर्थ्य पर संसाधन उपयोग अत्यधिक निर्भर है। संसाधनों के सन्दर्भ में दो प्रकार की विचारधारा विकसित हुई है–प्रथम स्थैतिक विचारधारा एवं द्वितीय गतिक विचारधारा।

"स्थैतिक विचारधारा के विद्वानों का मत है कि संसाधन स्थिर होते हैं जिनके परिणाम में वृद्धि नहीं की जा सकती, चाहे वे खनिज हो, जल हो, मृदा हो या बन। इस विचारधारा से जुड़ी कुछ मिथ्या संकल्पनाएँ है–संसाधन भौतिक पदार्थ है, संसाधन पूँजी मात्र हैं. संसाधन सुगम रूप से उपलब्ध हैं। इस प्रकार की विचारधारा का वर्तमान में महत्त्व नहीं है।"[5]

गतिक विचार धारा (Dynamic School) की मान्यता है कि संसाधन होते नहीं, बनते है (Resoursces are not they become) प्रकृति के उपादान मानवीय प्रयासों, तकनीक आदि से ही संसाधन के रूप में अस्तित्व में आते हैं और मानवोपयोगी स्वरूप ग्रहण करते हैं। कोई भी प्राकृतिक वस्तु जब तक मानव की आवश्यकता की पूर्ति का साधन नहीं बनती, तब तक वह एक उदासीन तत्व (Neutral Stuff) के रूप में रहती है।

संसाधन, प्रतिरोध और उदासीन तत्व (Resoursces Resistance and Neutral Stuff)– जहाँ संसाधन उपलब्ध होते हैं वहाँ प्रतिरोधक तत्व भी पाये जाते हैं। प्रकृति मानव के लिए ऐसे पदार्थ प्रदान करती है जो संसाधन का कार्य कर सकते हैं, जैसे कृ षि के लिए भूमि ऊर्जा हेतु कोयला, फसलों के लिए वर्षा का जल, आदि। साथ ही प्रकृति मानव को कुछ हानिकारक पदार्थ भी प्रदान करती है, जिन्हें प्रतिरोधक तत्व कहते हैं, जैसे– बंजर भूमि, बाढ़, भूकम्प, तूफान, दलदल, मरुस्थल, हिम आदि मानव संसाधन में भी प्रतिरोधक तत्व होते हैं, जैसे–अशिक्षा, कुपोषण, अज्ञान, जाति संघर्ष आदि संसाधन और प्रतिरोधक तत्व साथ–साथ कार्यरत रहते हैं। आणविक ऊर्जा शक्ति का महत्त्वपूर्ण संसाधन है, किन्तु परमाणु बम के रूप में यह मानव के लिए विनाशकारी बन जाती है।

इनसे भिन्न प्रकृति में तीसरे प्रकार के पदार्थ भी होते हैं, जो न लाभकारी होते हैं ना हानिकारक इन्हें उदासीन तत्व कहते हैं। जब मानव को कोयले का उपयोग पता नहीं था तब वह एक उदासीन तत्व था। उदासीन तत्वों को उन्नत तकनीक, वैज्ञानिक शोध, पूँजी, श्रम आदि से संसाधनों में परिवर्तित किया जा सकता है। विकास के साथ–साथ अनेक उदासीन तत्व उपयोगी संसाधन बन चुके हैं।

फैन्टम संसाधन सिद्धान्त (Fantom Resource Principle) फैन्टम या छायापुन्ज सिद्धान्त के माध्यम से जिमरमैन ने यह स्पष्ट किया कि यद्यपि वजन और आयतन में उपयोग तथा दुरुपयोग द्वारा संचित संसाधन का ह्रास हो रहा है तथापि उसे प्राविधिक उपलब्धि से उसकी प्रति इकाई और कुल उपयोग क्षमता में कई गुना वृद्धि हो रही है।

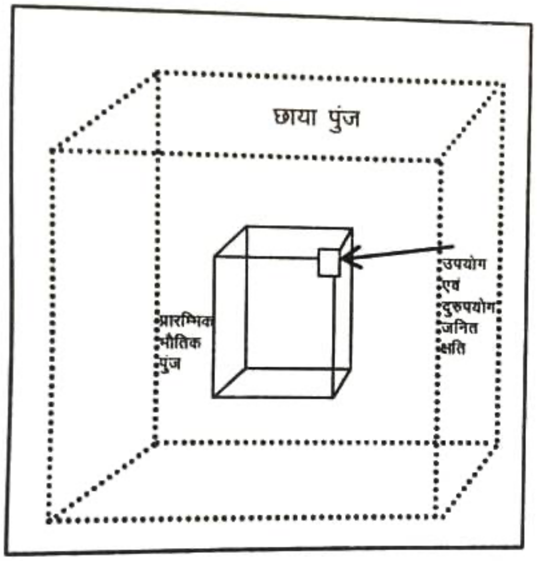

आरेख 4.1–फॅन्टम या छाया पुंज नियम

इस चित्र में जिमरमैन ने यह समझाने का प्रयास किया है कि यद्यपि वजन और आयतन में उपयोग तथा दुरूपयोग द्वारा संचित संसाधन का खास हो रहा है तथापि उसे प्राविधिक उपलब्धि से उसके प्रति इकाई और कुल उपयोग उपलब्धि में कई गुना वृद्धि हो रही है। यह तथ्य इस उदाहरण से स्पष्ट होता है– सन् 1980 में भारत के पास कोकिंग का भण्डार 2000 मिलियन टन था। उस समय 2 टन कोयले से एक टन लोह धातु को पिघलाने में प्रयुक्त होता था। अब उन्नत तकनीक के फलस्वरूप एक टन कोयले से 2 टन लोह धातु को पिघलाया जाता है।

इस प्रकार कोयले की कार्यात्मक क्षमता चार गुना अधिक हो गई। विगत वर्षों में यदि 500 मिलियन टन कोयले का उपयोग किया गया, तो 1500 मिलियन टन का भण्डार की कार्यक्षमता अब चार गुना अधिक होने से काल्पनिक पुन्ज (भण्डार) 6000 मिलियन टन के

बराबर हो गई इस प्रकार भण्डार में वास्तविक कमी के उपरान्त भी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है यह सिद्धान्त फैन्टम पुंज कहलाता है।

अन्य अवधारणाएँ संसाधन की प्रकृति एवं स्वरूप के सम्बन्ध में अनेक भूगोलवेत्ताओं ने अपने विचार दिये हैं। बोमेन (Bowman) के मत में पृथ्वी में लौकिक परिवर्तन शनैः–शनैः होते हैं किन्तु पदार्थ में वह सतत् अपरिवर्तित रहते हैं। मिशेल (Mitchell) ने मानव को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संसाधन माना है, क्योंकि ज्ञान ही मानव के समस्त संसाधनों के उपयोग का माध्यम है, इसी कारण सभ्यता के विकास के साथ संसाधन उपयोग बदलते रहते हैं मार्शल (Marshall) ने भी यह स्वीकार किया कि प्राकृतिक परिस्थितियों में परिवर्तन नहीं होते, केवल मानव अपने ज्ञान एवं तकनीक से उनका उपयोग करता है।

संदर्भ सूची

1. *सक्सेना एच.एम, आर्थिक भूगोल, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर, संस्करण 2010, पृ. 50*
2. *वहीं, पृ. 52*
3. *वहीं, पृ. 63*
4. *वहीं, पृ. 64*
5. *वहीं, पृ. 66*

Contributors Details:

डॉ. उपेन्द्र कुमार